P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February (Part2) * 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

निराला और सामाजिक चेतना : उनके निबन्ध साहित्य के संदर्भ में

रामपाल गंगवार
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
सी0एम0पी0 कालेज,
इलाहाबाद

सारांश

हिंदी साहित्य और संवेदना के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान करने वाले महान कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की सामजिक चेतना का मूल्यांकन उनके निबंधों के आधार पर करने का प्रयास किया गया है। हासिये के समाज के प्रति निराला की दृष्टि क्या थी और वे अपने समकालीनों में कहाँ खड़े थे इसको समझने में उनके निबंधों से अधिक और कोई हमारी मदद नहीं कर सकता है ।

मुख्य शब्द : हासिये का समाज–दलित, स्त्री, अल्प संख्यक, मजदूर किसान।

प्रस्तावना

आलेख का प्रयोजन निराला की सामजिक चेतना का संतुलित अध्यन करना है, साहित्य की अन्य विधाएं उतनी मदद नहीं कर सकती जितनी की एक साहित्यकार की सुविचारित टिप्पणियां, लेख एवं निबंध कर सकते हैं।

मनुष्य होने के नाते कवि साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है– सामाजिक परिवेश, घटनाओं–परिस्थितियों, संघर्षों, परिचर्चाओं आन्दोलनों से प्रभावित, अप्रभावित होता है और प्रभावित करता भी है। हमे तटस्थ होकर उसके कृतित्व का, संवेदना का मूल्यांकन करना चाहिए। किन्तु दिक्कत तब होती है जब हम यह मानकर चलते हैं कि 'यह कवि मेरा है और अपने कवि के ख़िलाफ मैं कोई बात सुनने को तैयार नहीं' और 'मेरा कवि ही मानवतावादी है, क्रान्ति–अतिक्रान्तिकारी है, बौद्धिक, जीनियस है, वगैरह–वगैरह। तब हम उसकी हर अच्छी–बुरी, संगत–असंगत बात की संगति बिठाने के कुतर्क गढ़ने लगते हैं, औचित्य सिद्ध करने लगते हैं। परिणामतः इससे सर्वाधिक क्षति सम्बन्धित व्यक्तित्व की होती है। यही बात निराला के साथ भी है, प्रेमचन्द और कबीर के साथ भी। किसी कवि की मूर्तिस्थापन और मूर्तिभंजन– दोनों ही पक्ष अतिवादी, असन्तुलित, पक्षपात–प्रेरित हैं जो वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन से बहुत दूर रहते हैं। पूर्णतः डिफेन्ड या 'रिजेक्ट' करने वाली दुराग्रही दृष्टि हिन्दी में बहुत फूलती–फलती आयी है इसके सर्वाधिक शिकार कबीर हुए और आज प्रेमचन्द एवं निराला हो रहे हैं। हम तटस्थ और निरपेक्ष होकर निराला की चेतना और संस्कारों के द्वन्द्व का मूल्यांकन नहीं कर सके। लठैती और चकबन्दी या पट्टेदारी नहीं चलती है, आलोचना में जिसका कि बहुधा प्रयोग निराला के सम्बन्ध में होता रहा। निराला सामाजिक प्राणी थे और समाज की विसंगतियों से मुठभेड़ करते रहे। इस हेतु उन्होंने सतत संघर्ष किया अपने संस्कारों से और चेतना एवं संस्कार के द्वन्द्व में वे अपने संस्कारों से (1933 तक) उबरे भी, पूर्णतः न सही और पूर्णतः उबरपाना शायद सम्भव भी नहीं; अधिकांशतः तो वे उबरते ही दिखते। उन्हें कबीर या प्रेमचन्द या रिवोल्यूशनरी सिद्ध करने की कोशिश नहीं होनी चाहिए।

हम जिसे हाशिये का समाज कहते हैं वस्तुतः सामाजिक न्याय की अवधारणा एतद हेतु संविधान में अनेक रूपों में प्रावधानित है। सामाजिक न्याय एक ऐतिहासिक श्रेणी है जो 'टाइम' और 'स्पेस' में निर्धारित होती है– हर आगामी समय में उसकी परिभाषा एवं स्वरूप विस्तृत और बदलता रहता है। अस्तु मूलभूत 'एकता'–मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठापना कभी नहीं बदलती। हम जब भी इतिहास या अतीत का अध्ययन करते हैं तब उसका सन्दर्भ वर्तमान ही रहता है। तब यह आवश्यक हो जाता है कि निराला साहित्य का मूल्यांकन भी वर्तमान सन्दर्भों में हो। समकालीन सन्दर्भों में स्त्री, दलित अल्पसंख्यक विमर्शों के मुख्य विषय हैं– हिन्दी साहित्य में तो स्त्री विमर्श और दलित विमर्श सर्वाधिक चर्चित और केन्द्रीय विषय बन गये। इन हाशिये के समाजों को निराला ने किस रूप में देखा और क्या योगदान किया? निराला की इसी सामाजिक चेतना को निर्धारित करने का प्रयास मैंने उनके निबन्ध साहित्य के माध्यम से किया है।

निराला का समूचा निबन्ध[1] साहित्य देखने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि 1922 से लेकर अन्त तक निराला की दृष्टि और सम्वेदना का विस्तार होता गया, एक विकासमान गतिमान प्रक्रिया देखी जा सकती। जो लोग निराला में सारा कुछ एक साथ आरम्भ से ही देख लेते हैं वे जड़वादी तो है ही साथ ही निराला के साथ भी अन्याय करते हैं क्योंकि ऐसा होने पर 1923[2] के निराला (निबन्ध) का वर्णाश्रम समर्थन, उन्हें दलित विरोधी, शूद्र विरोधी, ब्राह्मणवादी, गाँधी से भी पिछड़ा, सन्तराम बी0एस0 के समाज सुधार का धुर–विरोधी सिद्ध करता है और इन्हीं निराला समर्थकों की करतूत के कारण दलित चिन्तक, सामाजिक न्यायवादी चिन्तक निराला के ऐसे ही निबन्ध–टिप्पणियों को आधार बनाकर उन्हें सवर्णवादी, ब्राह्मणवादी, शूद्रदलित विरोधी, धुर हिन्दू–वेदान्ती सिद्ध करते हैं। यहाँ निराला सच में वर्ण एवं धर्म की रक्षा में खड़े हैं और लड़ने को तैयार, किसी भी तर्क को सुनने को तैयार नहीं। लेकिन धीरे–धीरे हम निराला को वर्णाश्रम के ख़िलाफ जाता देखते हैं, शूद्रों के शूद्रत्व के लिए वे उच्च वर्णो को दोषी मानने लगते हैं और एक सीमा तक निराला जाति तोडक मण्डल और सन्तराम वी0ए0 के रोटी–बेटी के नाते, अन्तर्जातीय विवाह के भी कुछ–कुछ पक्ष में दिखते है।[3] निराला का साहित्यिक जीवन (1916–1961) देश की आजादी–राजनीतिक ही नहीं सामाजिक धार्मिक आजादी भी की लड़ाई का समय है। गाँधी और अम्बेडकर के संघर्ष से सभी परिचित हैं। निराला गांधी से प्रभावित है मगर अम्बेडकर की अछूतोद्धार, मानव गरिमा की लड़ाई से प्रभावित है भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके समकालीन प्रेमचन्द सीधे–सीधे अम्बेडकर से प्रभावित हैं, अम्बेडकर की खुलकर प्रशंसा भी की है प्रेमचंद ने मगर निराला चुप है। यह चुप्पी निरालना की चेतना पर संस्कारों के दबावों का संकेत करती है। निराला विवेकानन्द के शिष्य होकर भी यह कहने का साहस नही जुटा सके कि 'भारतीय समाज को ब्राह्मण रूपी विषधर ने डसा है और विषपान सबसे पहले ब्राह्मण को ही करना पड़ेगा'। शायद निराला के शांकरवेदान्ती संस्कार और विवेकानन्द के अन्तिम समय के स्मृति समर्थक प्रतिक्रान्ति वादी विचार– दोनों की धनीभूत छाया से निराला उबर नही पाये फलतः काफी बाद तक के निबधों में भी वे चेतना विरोधी सांस्कारिक विचार व्यक्त करते रहे। एक तरफ यदि वे शूद्र शक्ति के उत्थान की बात करते है तो दूसरी तरफ उनके राष्ट्र में केवल तीन वर्ण ही आते– ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य; शूद्र नही, दलित की बात ही छोड़िए, अल्पसंख्यक भी नहीं। सारी दुनिया की सभी समस्याओं का हल वेदान्त में, वेदान्त विरोधी अन्य किसी भारतीय विचार धारा या व्यवस्था को वे कोई महत्व नही देते है। यह कहकर कि 'शूद्र शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी' एक और बात यह भी जोड़ देते है कि 'कोई राष्ट्र तब तक स्वाधीन नही हो सकता, जब तक उसके ये तीनों वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जगन गए हों – उसकी मेधा पुष्ट, शासन स्वाधीन सुदृढ़ और वाणिज्य स्वायत्त तथा प्रबल न हों।[4] निराला वस्तुतः 'ब्राह्मण समाज में ज्यो अछूत' थे न कि स्वयं अछूत। इसीलिए अछूतों के प्रति उनके लेखन में खॉफ नजर आती है। वे इसीलिए 'शंकर के कठोर शूद्र–नियमों का भी पक्ष लेते हैं संस्कार और चेतना के द्वंद्व में चेतना के विस्तृत मैदान में संस्कार की पताका ही फहराती नजर आती है– बरबस दृष्टि उसी पर केन्द्रित हो जाती है और उनके चिन्तन का भूगोल इतिहास स्पष्ट हो जाता है।

वे वहाँ तक तो सही है जब शूद्रों के जागरण का आरम्भ मुसलमानी शासन से मानते हैं किन्तु उनका निष्कर्ष चूक वहाँ जाता है जब वे कुछ खास टिप्पणियाँ करते हैं शंकराचार्य को आरम्भ से अन्त तक डिफेंड करते हैं कि वे किसी के विरोधी नहीं थे, उनकी शूद्रों पर बंदिशे जायज थीं। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के महत्व को मानकर भी बौद्ध की समता दृष्टि–अधिकार भेद न रह जाने–को ही बौद्ध धर्म के पतन का कारण सिद्ध करते हैं। वे स्त्री–पुरुष के समान एक साथ के भी विरोधी हैं और बुद्धि एवं हृदय में बुद्धिमान के हृदयहीन होने का पक्ष लेकर एक प्रकार से शूद्र–विरोधी उच्च वर्ण की हृदयहीनता का ही पक्ष ले रहे हैं।[5] उसी प्रकार उनका यह कथन कि गुलामी में कोई ब्राह्मण, क्षत्रीय नहीं होता, सभी शूद्र ही होते हैं। एक तरह से अति सरलीकरण है जटिल समस्या का और भेद दृष्टि का भी परिचायक हैं यह 'मिसगाइड;' और 'कनफ्चूज' करने वाला वैसा ही शरारतपूर्ण कथन जैसा प्रेम चन्द के राय साहब का दुःखड़ा रोना' गोदान में या आज के धन्ना–सेठों का कथन कि 'हम सभी अमेरिका से ही उत्पीड़ित हैं, भारतीयों का भारतीयों द्वारा शोषण डिफेन्ड करना, वरगलाना है– मफलेषु कदाचन।' इस सच्चाई से कौन आँखें चुरा सकता कि यहाँ न सभी शूद्र हैं, न ब्राह्मण अपने को शूद्र मानने को तैयार। यह सही है कि निराला के यहाँ धोबी, पासी, चमार, तेली, लोधी, अहीर, कुम्हार जैसा दलित शूद्र व्यवसायिक जातियाँ ही प्रमुख हैं जिनके बेहद विरोधी उनके प्रिय कवि तुलसी दास थे। मगर निराला जाति–वर्ण का वर्ग में असंगत घालमेल कर देते हैं। परिणामतः उनके किसान भी दलित–शूद्र ही हैं जिनके शोषण के सामने दलितों का शोषण छिप जाता जबकि हम इस सच्चाई को झुठला नहीं सकते कि किसानों की भी जातियाँ हैं गरीब–रहीस भेद हैं। कुल मिलाकर दलित–मजदूर, किसानों के द्वारा उत्पीड़ित शोषित है। इसका कारण 'स्वअनुभूति और 'सह अनुभूति' के आधार पर समझा जा सकता हैं। निराला गाँव की जटिल संरचना से ज्यादा शहर की अपेक्षाकृत सरल संरचना से ही ज्यादा परिचित थे। प्रेम चन्द इस क्षेत्र में ग्रामीण संरचना को कहीं ज्यादा सही–सही समझ पाते। निराला प्रेम चन्द को आदर्शवादी मानकर आलोचना करते हैं। मगर निराला स्वयं भी इस बात से सहमत नहीं है कि 'पेड़का चित्र खींचनेसे पहले कलाकार को पेड़ बनने की आवश्यकता होगी।[6] एक तरह से प्रेम चन्द मानो 'स्वअनुभूति के समर्थन में है जब कहते हैं कि 'हो सकता है कि कोई कलाकार नास्तिक होकर भी भक्तिपूर्ण चित्रों की या भक्ति रस की कविता की रचना करे पर इस रचना में कदापि वह चीज और प्रभाव नहीं हो सकता जो एक आस्तिक की रचना में हो सकता है।[7]

निराला मानवतावादी हैं, प्रायः कवि–साहित्यकार से ऐसी अपेक्षा होती ही है, साहित्य का गुण ही है 'सबकरि हित होई।' निराला पक्के वेदान्ती है, हिन्दू है,

ब्राह्मण है। वे सारी समस्याओं का समाधान 'जड़ विज्ञान' के वजाय वेदान्त में खोजते हैं। वेदान्ती शांकर विचारों के कारण निराला कभी–कभी भारतीय विविधता का उल्लंघन कर जाते हैं। कविता में तो 'शिवाजी को पत्र', 'जागो फिर एक बार', 'तुलसीदास' में साफ हिन्दूवादी, मुस्लिम–विरोधी दृष्टि देखी जा सकती है।[8] यवन साम्राज्य ध्वस्त और 'देव द्विज' की जय। एक तरह से शूद्र–दलित–अल्पसंख्यक विरोधी। निराला एक हद तक ही मुसलमानों से जुड़ते हैं ठीक वैसे ही जैसे भारतेन्दु। वे प्रेमचन्द के विपरीत, भारतेन्दु की 'जेठानी द्यौरानी की भाषा में मुसलमानों से बतियाते। प्रायः सभी हिन्दू–मुसलमानों की समानताओं पर वेदान्त का ही प्रभाव सिद्ध करते हैं जो शायद ही स्वीकार्य हो। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, शान्ति आदि को दुनिया को वेदान्त की देन मानते हैं। वे कुरान के असल मन्त्र जो लाइलाहइल्लिल्लाह' है को वेदान्त के 'एकमेवाद्वितीयम्' का अक्षर–अक्षर अनुवाद मानते हैं।[9] और महाकवि गालिब के 'न था कुछ तो खुदा था ....' के भाव हर्फ–2 वेदान्त से मिलते बताते हैं।[10] मूर्ति प्रेम भी वे मुसलमानों में खोज लेते हैं। मुसलमानों को शायद ही यह मंजूर हो। मुसलमानों का शासन उन्हे 'संस्कृति विरोधी विनाशक लगता है जबकि 'सांसारिक जितने भी चमत्कार हैं, उन सब पर प्रभुता करने वाली यही भूमि है और संसार में जितने भी भेद हैं उन सबमें साम्य स्थापित करने वाली भी यही भूमि है। यही हिन्दुओं की अद्वैत भूमि है।[11] हिन्दुओं की जो मानसिक स्थिति पहले थी वह मुसलमानोंके आक्रमण काल तक नहीं थी।[12] वे दोनों के लिए मनुष्यता की शिक्षा पर जोर देते हैं। परन्तु वेदान्त ही आधार मानते हैं इस हेतु क्योंकि इस्लाम ही नहींसारी दुनिया का ज्ञान विज्ञान का आधार वेदातन्त ही हैं वे डार्विन की विकासवादी कल्पना को मोहान्ध सिद्ध करते हैं। 'आज तक डार्विन थ्योरी के विरोधी योरप में भी अनेक हो गये हैं, परन्तु वेदान्त अनादि काल से आज तक उसी सत्य पर स्थित और अविचल है।[13] मुक्त छन्द की प्रेरणाओं में एक प्रेरणा मुस्लिम भाषा छन्द से रक्षा कवच के रूप में भी मिलती दिखती है।[14] वे सन्तराम बी0ए0 के रोटी–बेटी के उदारभाव एवं मुसलमानों से हारने के लिए ब्राह्मणों की जिम्मेदारी का प्रतिवाद तिलक की तरह करते हैं" जिन्होंनं इसे स्वाधीन रखा था उन्होंने गिरायाभी। इसी तरह एक ब्राह्मण की गलती से बुलबुल शाह के भी लाखों भाई मुसलमान हो गये। पर बुलबुल शाह के भाई जब हिन्दुस्तान 'सितच्छत्रित' कीर्ति माडला हो रहे थे, उस समय 'स्वधर्म निधनं श्रेय परधर्मो भयावहः' की उस उल्टी व्याख्या ने ही हिन्दू धर्म को मुसलमान धर्म में विलीन होने से बचाया था। यदि उस समय मुसलमानों की धार्मिक उदारता के साथ ब्राह्मणों की वैदान्तिक उदारता ने अभेदत्त्व का प्रचार किया होता तो निःसन्देह इस समय हिन्दू धर्म के सुधार के लिए आवाज उठाने के कष्ट से सन्तरामजी बालबाल बच गये होते और शायद हम लोग इस समय अपनी दाढ़ियों में खुदा कानूर देखकर प्रसन्न हो रहे होते।[15] निराला मुसलमानों को छाती का पीपल तक कहते थे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं वे यही तक रूके रह गये अपितु धीरे–धीरे हम उनकी संवेदना का विस्तार देखते हैं। कट्टरता के इस्लाम विरोधी संस्कर धीरे–धीरे घिसते हैं। वाद के निबंधों में वे दोनों की एकता की बात करते हैं लेकिन तत्त्ववाद के जरिए वे धर्मनिरपेक्ष होने का प्रयास करते हैं मगर उसमें भी वेदान्त का ही वर्चस्व है जिसके चाबुक से वे सभी हिन्दुस्तानियों–सवर्ण, असवर्ण, शूद्र, दलित, द्विज एवं अल्पसंख्यकों को एक करने का प्रयास कर रहे थे। वे मुस्लिम विरोधी नहीं थे मगर अल्पसंख्यकों में उन्हें 'पारसी' कहीं ज्यादा ासन्द है। यह सही है कि भारतीय इतिहास में यह समय हिन्दू–मुस्लिम एकता की संकट की घड़ी है। मुस्लिमलीग, हिन्दू महासभा, पृथक् निर्वाचन क्षेत्र, पाक प्रस्ताव, बॉटो और राज करो की ब्रिटिश नीति, कराची प्रस्ताव आदि के साथ हिन्दी–उर्दू का द्वन्द्व ये सब ऐसे मसले थे जिनमें तटस्थ रहकर बात करना जटिल था। हाँ, प्रेमचन्द अपने समय में अकेले ऐसे लेखक थे जहाँ हिन्दू–मुस्लिम सामासिक संस्कृति के दर्शन होते हैं इस क्षेत्र में निराला हमें अन्य छायावादियों की तरह निराश ही करते हैं।

यह सही है कि हिन्दू समाज एवं संस्कृति की जड़ता पर प्रेमचन्द और निराला दोनों सर्वाधिक प्रहार करते हैं अपने समय में। हिन्दी में संस्कृति पर सर्वाधिक चोट करने वाले प्रेमचंद और निराला ही है। एक के यहाँ 'पेट भरो का व्यसन है' तो दूसरे के यहाँ नस–नस में शरारत भरी' 'हजारो वर्षों से सलाम ठोकते–ठोकते नाक में दम हो गया, अभी संस्कृति लिए फिरते हैं।

यदि हम वर्ण एवं लिंग पर व्यक्त निबन्धों में उनके विचारों का विश्लेषण करें तो यह कहा जा सकता है कि लिंग.–स्त्री आधारित चिन्तन, लेखन वेहद क्रान्तिकारी और प्रासंगिक है। उन्होंने विवाह संस्था पर प्रहार किया, विवाह की कुरीतियों परहमला बोला तथा उसके लिए जिम्मेदार ब्राह्मणों–नापितों की तीखी खबर ली। अल्पायु में विवाह के शास्त्रानुमोदन की धज्जियाँ उड़ायी। 'हिन्दू अबला' निबन्ध में उन्होंने पोंगा–पण्डितों और दढ़ियल मुल्लाओं से हजार गुना शिक्षित और दीक्षित माना स्त्रियों को। उन्होंने विधवाओं के ऊपर शास्त्रात्याचार की कड़ी निन्दा की। नारी के सम्पत्ति अधिकारों की बात उठायी और नौजवानों तथा नवयुवतियों से इस पापाचार के ख़िलाफ बगावत करने का आह्वान किया। सही निष्कर्ष्ज्ञ पर पहुंचे भिखमंगों के इन भयानक आत्याचारों के कारण ही हिन्दू नारी बअला है।[16] उन्होंने सारदाविल कासमर्थन कर बाल विवाह का विरोध किया। इसी प्रकार विधवा विवाह पर जो विचार उन्होंने व्यक्त किये वे समकालीन पुरूष लेखकों में कम ही मिलते। यहाँ वे अपने गुरू विवेकानन्दसे भी आगे हैं। विकानन्द को जहाँ पाश्चात्य नारी पुरुष से होड़ करने वाली 'कलम घिसने वाली' आदि अतः अच्छी नहीं लगती अपितु सलज्ज कुलीन भारतीय आदर्शनारी (सीता आदि) ही अच्छी लगती। जबकि निराला पश्चिम की स्त्री की स्वाधीनता, आत्मनिर्भता से प्रेरित हैं। अब वह समय नहीं रहा कि हम स्त्रियों के सामने वह रूप रखें, जिसके लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'चित्र लिखे कपि देखि डेराती' लिखा है।[17]

उन्होंने शिक्षा को सभी दैन्यों को दूर करने वाला बताया। उन्होंने भीख के अन्न को इकट्ठाकर हर गाँव में पाठशाला खेलने की बात की। वे 'पर्दानशीन' स्त्रियों को

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February (Part2) * 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

वायु की तरह मुक्त की बात करते हैं क्योंकि 'पर्दा सारे अत्याचारों, बलात्कारों की जड़ है। उन्होंने शिक्षा एवं स्वावलम्बन पर जोर दिया और 'सच्चे धर्म' को स्त्रियों के सभी बन्धन ढीले करने को बताया।[18] निराला प्रतिद्वन्द्वता को स्त्री विकास में साधक मानते हैं जहाँ विवेकानंद घातक मानते थे। स्पर्द्धा ही जीवन है। उसमें पीछे रहना जीवन की प्रगति को खोना है। जीवन में विजय प्राप्त करना हर जाति और हर धर्म की शिक्षा है।.....स्त्रियों का शव लेकर विजयी होना असम्भव है। स्त्रियों के रूप में जो विजय घर में मौजूद है, वही बाहर भी मिलती है। घर का अभागा कभी बाहर प्रसिद्धि नहीं पाता।[19] निराला नारी स्वाधीनता को देश की स्वाधीनता और राष्ट्रभाषा से जोड़ते हैं।[20] किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि यह कोई क्रान्ति है, वस्तुतः निराला और प्रेमचन्द दोनों ने क्रान्तिकारी विचार तो रखे मगर स्वयं उन्होंने अपनी पुत्रियों को कितनी स्वाधीनता दी? दोनों ने अपनी पुत्रियों की अपनी ही जातियों में आनुष्ठानिक विधि से शादी की।

निष्कर्ष:वैसे निराला ही ने हाशिए के समाज को वाणी नहीं दी; उनकी समकालीन छायावादी कथित मीरा महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' रूप में संकलित लेखों–निबंधों में और अन्य अकल्पित गद्य में जो वाणी दी वह उनके समकालीन किसी में नहीं उपलब्ध होती।

एक तरह से 'सवल्ट्रन स्त्री'–शूद्र, दलित भक्तिन, विधवा, बरेठिन, शिविया विविषा आदि का सर्वप्रथम इतिहास लिखने वाली महादेवी ही, जो नारी होने और सीधा सम्पर्क होने के कारण कहीं ज़्यादा यथार्थ के करीब हैं। जरूरत है तटस्थ भाव से देखने की। यह कहना निराला का जीवन 'दुःख की कथा रहा इसी से व दुखती रग तक पहुँच सके, हाशिए के समाज से जुड़ सके, यह पूर्णतः ठीक नहीं; दुःख हीरा डोम का कहीं ज्यादा वास्तविक था, अछूतानन्द `क गीतों की पीड़ा कम मारक नहीं थी; मगरउन्हें हिन्दी की विशिष्ट संस्कृति में कोई जगह नहीं मिली। निराला को ब्राह्मणों में वाल्टेयर कहने वालों को इनके बारे में कुछ कहना चाहिए। फिर भी यह कहा जा सकता है कि निराला इस क्षेत्र में बेहद आत्म संघर्ष से गुजरने वाले समकालीनों में अकेले कवि हैं जो निरन्तर सस्कारों से जूझते और लड़ते रहे। यह अलग बात कि यह लड़ाई हार–जीत का दावा नहीं कर सकती। लेकिन क्या लड़ना, अपने से, कुसंस्कारों से लड़ना काफी नहीं?

निष्कर्ष

उनके समस्त निबंधों के अध्यनोपरांत यह कहा जा सकता है की उनकी संवेदना का, सामजिक चेतना का लगातार विकास एवं विस्तार होता गया। फिर भी उनकी चेतना पर उनके उच्च वर्ण वाले हिन्दू संस्कार प्रायः हावी हो जाते हैं जब उनकी तुलना प्रेमचंद से करते हैं और जब उनके अन्य समकालीनों से तुलना करते हैं तो निराला निश्चित रूप से कहीं अधिक प्रगतिशील ठहरते हैं परन्तु क्रांतिकारी तब भी नहीं कहा जा सकता हैं !

अंत टिप्पणी

1. *तीन पत्रिकाओं–सुधा, समन्वय और मतवाला में उनके निबन्ध, लेख टिप्पणियाँ समय–समय पर छपती रहीं जिन्हें वाद में पुस्तकाकार पांच संग्रहों के रूप में प्रकाशित किया– प्रबन्धपद्म, प्रबन्धप्रतिमा, चाबुक, चयन और संग्रह। अभी 2009 में उनके प्रमुख निबन्धों का संग्रह निर्मला जैन और रामेश्वर राय के सम्पादन में 'निबन्धों की दुनिया निराला' नाम से वाणी से प्रकाशित; प्रथम संस्करण 2009।*
2. *देखें 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' निबन्ध, संग्रहीत 'चाबुक', राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 1998, पृ0 49 से 62; पूरा निबन्ध ब्राह्मणों एवं शंकर के पक्ष में, शूद्रों के विरोध में, शूद्रों के पतन के लिए निराला इस निबन्ध में उन्हें स्वयं जिम्मेदार ठहराते हैं। मुस्लिम विरोधी भी है इसमें। शूद्रों के प्रति तुलसी–सा विरोध 'बी0ए0 पास करके झीगुरलोध अगर, ब्राह्मणों को शिक्षा देने के लिए अग्रसर होंगे तो सन्तराम जी ही की तरह उन्हें हास्यास्पद होना पड़ेगा।' पृ0 61।*
3. *1929 तक रोटी–बेटी के धुर विरोधी निराला 1932 में 'रोटी वाला सवाल हल होना' ठीक मानने लगे और इसके हल हो जाने पर 'बेटी वाला भी सवाल आपसे प्रचलित होकर हल हो जायेगा' तथा 1933 में वे और आगे बढ़ते हैं। 'खान–पान विवाहादि सम्बन्ध के लिए भी घबराने की कोई बात नहीं। ...आज कल ब्राह्मणेतर समाज में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं जो विद्या और बुद्धि में ब्राह्मणों के बराबर हैं। फिर ब्राह्मणों की कन्याओं का उनके साथ और उनकी कुमारियों का ब्राह्मणों के साथ मानसिक मेल तथा विवाह असंगत या अस्वाभाविक कदापि नहीं। (निराला रचनावली खण्ड 6, पृ 416)।*
4. *'सुधा' मासिक, लखनऊ, जनवरी, 1930 (समाज सुधार' शीर्षक स्तम्भ में) 'प्रबन्ध प्रतिमा' में 'वर्तमान हिन्दू समाज' नाम से संकलित, पृ0 148, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति, 2002*
5. *वही, पृ0 'अधिकारियों का भेदन रखने से बौद्ध धर्म शीर्घ ही नष्ट हो गया, सब वर्णों तथा उभय लिंगों के एकत्र वास के कारण आचरण शुद्ध नहीं रह सके। इधर ब्राह्मणों में आचार निष्ठा थी।' पृ0 145, देखें कला के विरह में जोशी बन्धु निबन्ध पृ0 140 ।*
6. *निबन्धों की दुनिया निराला, में संकलत निबन्ध साहित्य का आदर्श (सुधा नवम्बर 1932 का सम्पादकीय) पृ0 186 ।*
7. *वही पृ0 186 ।*
8. *फैले संवेदना/ व्यक्ति का खिंचाव यदि जातिगत हो जाय/एक ओर हिन्दू एक ओर मुसलमान हों।/देखों परिणाम फिर स्थिर रहेंगे न पैर यवनों के/–लेकिन यवन साम्राज्य के बजाय द्विज–देव की स्थापना – 'धन्य हूँगा, देव द्विजदेश को/ सौंप सर्वस्व निज।'*
9. *निबन्धों की दुनिया निराला, में 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य पृ0 116 ।*

10. वही, पृ0 109 ।
11. वही, पृ0 110 ।
12. वही पृ0 112 ।
13. कला के विरह में जोशीबन्धु पृ0 142 ।
14. मेरे गीत और कला, पृ0 155 ।
15. चाबुक, पृ0 61
16. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज भाग 1, सं0 सम्भुनाथ, सं0 2004 पृ0 676–677 ।
17. बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां, 'निबन्धों की दुनिया निराला' में संग्रहीत पृ0 206, (सुधा, मासिक, लखनऊ, मार्च 1930 'स्त्री समाज' शीर्षक स्तम्भ में 'प्रबन्ध प्रतिमा' में संकलित)।
18. वही, पृ0 208–09 ।
19. वही, पृ0 210।
20. वही, पृ0 210।